डालडा बनाने का नोबेल पुरस्कार

डॉ. सुशील जोशी

डालडा हमारे देश में एक घरेलू नाम है। रोचक तथ्य यह है कि पाकिस्तान में भी डालडा खूब बिकता है। डालडा चीज़ क्या है? दरअसल डालडा वनस्पति तेलों में थोड़ा परिवर्तन करके बनाई गई चीज़ है। रसायन शास्त्र की भाषा में कहें तो यह वनस्पति तेलों का हाइड्रोजनीकरण करके बनाई गई वसा है। वनस्पति तेलों के हाइड्रोजनीकरण की विधि 1901 में विल्हेल्म नॉर्मन ने खोजी थी। दरअसल यह तेल को घी में बदलने की एक तरकीब थी जो व्यापारिक दृष्टि से खूब कामयाब रही मगर सेहत की दृष्टि से विवादास्पद।

वसा हमारे भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। वसा की पूर्ति के लिए हमारे पास दो प्रमुख स्रोत हैं - वनस्पति तेल और जंतु स्रोतों से प्राप्त वसा। जंतु स्रोतों से प्राप्त वसा में घी और मक्खन का नाम प्रमुखता से आता है। वनस्पति तेलों और मक्खन-घी में प्रमुख अंतर क्या है? अधिकांश वनस्पति तेल साल भर सामान्य तापमान पर तरल होते हैं (खोपरे का तेल एक अपवाद है जो जाड़े के दिनों में जम जाता है)। दूसरी ओर घी, मक्खन आदि सामान्य तापमान पर अर्ध-ठोस अवस्था में रहते हैं और थोड़ा-सा गर्म करने पर पिघल जाते हैं।

घी और तेलों के भौतिक गुण में यह अंतर उनकी रासायनिक संरचना का परिणाम होता है। वसा दरअसल कार्बनिक अम्लों और ग्लिसरॉल की क्रिया से बने यौगिक होते हैं। वसा में जो कार्बनिक अम्ल पाए जाते हैं वे कार्बन की काफी लंबी श्रृंखला के बने होते हैं। अक्सर ये श्रृंखलाएं 16 से लेकर 18 कार्बन परमाणुओं से बनी होती हैं।

कार्बन एक तत्व है जिसकी अन्य तत्वों से क्रिया करने की क्षमता 4 है। इसे संयोजकता कहते हैं। जब कार्बन अन्य तत्वों से क्रिया करता है तो इसी संयोजकता के आधार पर करता है। जैसे हाइड्रोजन की संयोजकता 1 है। तो हाइड्रोजन के चार परमाणु कार्बन के 1 परमाणु से क्रिया कर लेंगे। इस तरह जो यौगिक बनेगा उसमें कार्बन का 1 व हाइड्रोजन के चार परमाणु होंगे और इसे मीथेन कहते हैं। रासायनिक भाषा में इसे CH_4 भी लिखा जाता है। इसी बात को लिखने का एक तरीका और है:

$$\begin{array}{c} H \\ | \\ H-C-H \\ | \\ H \end{array}$$

ध्यान दें कि इसमें हर रेखा एक बंधन की द्योतक है।

कार्बन का एक और महत्वपूर्ण व अनोखा गुण है। कार्बन के परमाणु एक-दूसरे से जुड़-जुड़कर लंबी-लंबी श्रृंखलाएं बना लेते हैं। और कार्बन इस तरह एक-दूसरे से जुड़ते समय कई तरह से जुड़ सकता है। दोनों कार्बन परमाणु आपस में जुड़ने के लिए अपनी एक-एक संयोजकता का उपयोग कर सकते हैं, दो-दो संयोजकताओं का उपयोग कर सकते हैं और यहां तक कि तीन-तीन संयोजकताओं का उपयोग भी कर सकते हैं। इन्हें क्रमशः इकहरा, दोहरा और तिहरा बंधन कहते हैं।

$$C-C$$
$$C=C$$
$$C\equiv C$$

ज़ाहिर है कि दोहरा बंधन बनने पर दोनों कार्बन परमाणुओं की दो-दो संयोजकताएं मुक्त हैं और दोनों परमाणु दो-दो और बंधन बना सकते हैं। तिहरा बंधन बनने के बाद दोनों परमाणु एक-एक बंधन और बना सकते हैं।

जब कार्बन की लंबी-लंबी श्रृंखलाएं बनती हैं तो प्रायः कार्बन परमाणुओं के बीच इकहरे बंधन बनते हैं। मगर कभी-कभी दोहरे व तिहरे बंधन भी बन जाते हैं। यदि ऐसी श्रृंखला में सिर्फ कार्बन और हाइड्रोजन के परमाणु हों, तो इस तरह बने यौगिकों को हाइड्रोकार्बन कहते हैं। यदि इन

श्रृंखलाओं में अन्य परमाणुओं का भी समावेश हो तो तरह-तरह के यौगिक बनते हैं। जब कार्बन श्रृंखला में अम्ल समूह हो तो वसीय अम्ल बनते हैं। कार्बनिक अम्लों में अम्ल समूह COOH होता है।

तेल वाली वसा और घी वाली वसा के बीच प्रमुख अंतर कार्बन परमाणुओं के बीच बने बंधनों का होता है। जैसा कि ऊपर कहा गया था, तेल और घी दोनों कार्बन की 16-18 परमाणुओं की श्रृंखला वाले वसीय अम्ल होते हैं।

C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-COOH

यह 18 कार्बन परमाणु वाला एक वसीय अम्ल है। इसमें मानकर चलते हैं कि कार्बन परमाणुओं की जो संयोजकता मुक्त है वहां हाइड्रोजन का परमाणु जुड़ा है। आप देख ही सकते हैं कि इस यौगिक में सारे कार्बन परमाणुओं के बीच इकहरे बंधन हैं। अब यदि कहीं दोहरा बंधन हो तो उसे निम्नानुसार दर्शाते हैं:

C-C-C-C-C-C-C-C-C=C-C-C-C-C-C-C-C-C-COOH

ये तो हैं वसीय अम्ल। अब इनकी ग्लिसरॉल से क्रिया हो जाए तो वसा का निर्माण होता है (देखें चित्र)।

घी और तेल में मुख्य अंतर यह है कि जहां घी-मक्खन वगैरह में कार्बन श्रृंखला इकहरे बंधनों से बनी होती है वहीं तैलीय वसाओं में कार्बन श्रृंखला में कहीं-कहीं दोहरे बंधन भी पाए जाते हैं। इन्हीं दोहरे बंधनों की उपस्थिति की वजह से इन दो तरह की वसाओं के भौतिक गुणों में फर्क पड़ जाता है। खास तौर से गलनांक और क्वथनांक में काफी अंतर होता है।

मगर उससे क्या फर्क पड़ेगा, खासकर भोजन पकाने के माध्यम के रूप में क्या फर्क पड़ेगा? दोहरे बंधन की एक विशेषता होती है। जिन कार्बन श्रृंखलाओं में ऐसे दोहरे बंधन पाए जाते हैं, ज़ाहिर है उनमें अभी और हाइड्रोजन (या अन्य परमाणु) जुड़ सकते हैं। इस मायने में ये दोहरे बंधन वाली श्रृंखलाएं असंतृप्त हैं। मात्र इकहरे बंधन वाली श्रृंखलाएं संतृप्त श्रृंखलाएं होती हैं।

चूंकि तेल की वसा में असंतृप्त दोहरे बंधन होते हैं, इसलिए इनमें अन्य परमाणुओं से जुड़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है। रखे-रखे ही इनके दोहरे बंधनों वाले स्थलों पर अन्य परमाणु, खासकर ऑक्सीजन के परमाणु जुड़ते रहते हैं। हवा में ऑक्सीजन प्रचुर मात्रा में पाई जाती है और यह एक क्रियाशील तत्व है। वैसे तो हवा में नाइट्रोजन भी काफी मात्रा में होती है मगर नाइट्रोजन अपेक्षाकृत अक्रिय तत्व है।

जब पकाने के लिए तेल को गर्म किया जाता है तो दोहरे बंधनों पर ऑक्सीजन के जुड़ने की क्रिया थोड़ी तेज़ हो जाती है। दूसरी ओर, घी वगैरह में दोहरे बंधन नहीं होते (यानी जंतु वसाएं संतृप्त होती हैं) और इनके इस तरह ऑक्सीकरण का खतरा नहीं रहता।

ऑक्सीकरण की क्रिया से तेल के गुण बिगड़ते हैं। इसलिए तेल में पकाए गए पदार्थों को रखे-रखना ज़्यादा लंबे समय तक संभव नहीं होता। यानी संतृप्त वसा में पकाए गए पदार्थों के मुकाबले इनकी शेल्फ लाइफ कम होती है।

लेकिन जंतु वसा महंगी पड़ती है। तेल और घी के दामों में अंतर से तो आप वाकिफ ही हैं। यहीं पदार्पण होता है हाइड्रोजनीकरण की महत्वपूर्ण प्रक्रिया का। किसी तरह से यदि तेलों की वसा को भी संतृप्त बना दिया जाए, तो उनमें जंतु वसा जैसे गुण आ सकते हैं। उनमें पकाए गए खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ भी बढ़ सकती है। और दाम घी की तुलना में फिर भी कम ही रहेंगे।

यही हुआ था सबसे पहले उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक यानी 1890 के आसपास। पॉल सेबेटियर ने एक विधि खोजी थी जिसकी मदद से असंतृप्त वसाओं का हाइड्रोजनीकरण करके संतृप्त वसा बनाई जा सकती थी। सेबेटियर को इस खोज के लिए नोबेल पुरस्कार मिला था। अलबत्ता, सेबेटियर की विधि सिर्फ वाष्प अवस्था में कारगर थी। यानी जिस तेल का हाइड्रोजनीकरण करना है, उसे पहले वाष्प में बदलना होता था और एक उत्प्रेरक की उपस्थिति में हाइड्रोजन के संपर्क में लाना पड़ता था।

फिर 1901 में जर्मन वैज्ञानिक विल्हेल्म नॉर्मन ने तरल अवस्था में ही तेलों का हाइड्रोजनीकरण संभव बना दिया और अपनी विधि का पेटेंट भी हासिल कर लिया। 1909 में इस विधि का औद्योगिक उपयोग शुरू हुआ और पहले साल में कुल 3000 टन हाइड्रोजनीकृत वनस्पति तेल का

उत्पादन हुआ। खास तौर से बेकरियों में इस वसा की खूब मांग थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि इस विधि से लगभग किसी भी तेल को घीनुमा वसा में बदला जा सकता था।

उदाहरण के लिए यूएस में प्रोटीन के एक स्रोत के रूप में सोयाबीन का आयात किया जाता था। सोयाबीन खली तो सीधे पशु आहार के रूप में खप जाती थी मगर सोयाबीन तेल का क्या करें? उस समय बाज़ार में मक्खन की बहुत कमी रहा करती थी। तो सोयाबीन तेल को नॉर्मन विधि से हाइड्रोजनीकृत करके बेचा जाने लगा। हाइड्रोजनीकृत वसा का उत्पादन लगातार बढ़ता गया और 1960 तक इसने बाज़ार पर कब्ज़ा जमा लिया। यह भी कहा गया कि यह घी वगैरह से ज़्यादा स्वास्थ्यकर है।

डालडा इसी प्रकार की हाइड्रोजनीकृत वसा है। डालडा की कहानी 1930 के दशक में शुरू होती है। हाइड्रोजनीकृत वसा (वनस्पति) को देश में लाने का श्रेय डच व्यापारियों को जाता है। डाडा एंड कंपनी नामक एक डच कंपनी वनस्पति का आयात करती थी। जल्दी ही यह काफी लोकप्रिय हो गया। 1930 के दशक में हिन्दुस्तान वनस्पति मैन्यूफेक्चरिंग कंपनी (जिसे आप हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड के नाम से जानते हैं) इसका उत्पादन स्थानीय स्तर पर भारत में ही करने की इच्छुक थी। डाडा एंड कंपनी का आग्रह था कि यहां उत्पादित वनस्पति के नाम में उनका योगदान झलकना चाहिए। तो हिंदुस्तान लीवर ने अपने नाम का एल डाडा के बीच में फिट किया और नाम बन गया डालडा। भारत में डालडा और वनस्पति शब्द लगभग पर्यायवाची हैं।

यहां एक बात गौरतलब है क्योंकि उसका सम्बंध हमारी सेहत से है। शुरुआत में जब वनस्पति तेलों के हाइड्रोजनीकरण की विधि खोजी गई थी, तो उसमें वसा तेल में मौजूद सारे दोहरे बंधनों का हाइड्रोजनीकरण हो जाता था। यानी पूरी कार्बन श्रृंखला संतृप्त हो जाती थी। पूर्ण संतृप्त वसा पकाने के लिए अच्छा माध्यम नहीं है। आगे चलकर एक ऐसी विधि खोजी गई जिससे वसा का अपूर्ण हाइड्रोजनीकरण संभव हो गया। इस विधि ने कई समस्याओं को जन्म दिया।

खैर, यह तो हुई 'डालडा' बनाने की विधि के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त होने की। मगर जल्दी ही डालडा के स्वास्थ्य पर असर को लेकर सवाल उठने लगे।

अपूर्ण हाइड्रोजनीकरण के ज़रिए आंशिक रूप से संतृप्त वसा का निर्माण होता है। इसकी प्रक्रिया कुछ ऐसी है कि इसमें प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली संतृप्त वसा नहीं बनती बल्कि उससे थोड़ी भिन्न किस्म की वसा बनती है।

हाइड्रोजनीकरण का अर्थ है कि कार्बन के परमाणुओं के बीच जो दोहरे बंधन हैं उन्हें खोलकर दोनों कार्बन परमाणुओं पर 1-1 हाइड्रोजन का परमाणु जुड़ जाए। अधूरे हाइड्रोजनीकरण के दौरान होता यह है कि पहले हाइड्रोजन जुड़ती है, फिर हट जाती है। यानी कुछ दोहरे बंधन इकहरे बंधन में बदलकर वापिस दोहरे बंधन में बदल जाते हैं।

कुदरती जंतु वसा में भी कुछ मात्रा में असंतृप्त वसा पाई जाती है मगर इस असंतृप्त वसा और उपरोक्त नॉर्मन विधि से बनी असंतृप्त वसा में एक अंतर होता - रसायन शास्त्र की भाषा में कहते हैं कि कुदरती असंतृप्त वसा सिस होती है जबकि नॉर्मन विधि से बनी असंतृप्त वसा ट्रांस होती है।

ट्रांस वसा का सेहत पर असर अब काफी जाना-माना है। ट्रांस वसा से रक्त में बुरे कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ती है जबकि अच्छे कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम होती है। इस वजह से ट्रांस वसाओं के सेवन से हृदय रोग की आशंका बढ़ती है। यह बात 1950 के दशक में पता चल चुकी थी मगर इसे स्वास्थ्य की एक बड़ी समस्या मानते-मानते 4 दशक और बीते तथा 1990 के दशक में अंततः साफ प्रमाण मिल गए कि हृदय रोगों में वृद्धि का एक बड़ा कारण ट्रांस वसा का बढ़ा हुआ सेवन है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की सिफारिश के मुताबिक भोजन में प्रतिदिन अधिकतम इतनी ट्रांस वसा होनी चाहिए कि उससे आपको अपनी ऊर्जा का 1 प्रतिशत प्राप्त हो। तुलना के लिए देखें कि कई कंपनियों द्वारा निर्मित फास्ट फूड का एक बार का सेवन इससे कहीं ज़्यादा ट्रांस वसा प्रदान करता है।

अब कई देशों में खाद्य उत्पादों पर यह सूचना देना अनिवार्य कर दिया गया है कि उनमें कितनी ट्रांस वसा है। कई देश तो खाद्य पदार्थों में ट्रांस वसा के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने पर भी विचार कर रहे हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***